इकाई 17 भारत में अभेदवाद की राजनीति (जाति, धर्म, भाषा तथा संरचना)

I;jpuk

17.1 प्रस्तावना

17.2 अभेदवाद की राजनीति क्या है ?

17.3 भारत में अभेदवाद की राजनीति

17.3.1 जाति

17.3.2 धर्म

17.3.3 भाषा

17.3.4 संजातीयता

17.4 सारांश

17.5 अभ्यास प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

अभेदवाद की राजनीति पिछले कुछ वर्षों से भारतीय राजनीति का प्रमुख विषय बन चुकी है। भारत में अभेदवाद की राजनीति का महत्व बढ़ने में निम्न जातियों का स्तर बढ़ना, धार्मिक अभेद, भाषायी समूहों तथा संजातीयता संघर्षों का उल्लेखनीय योगदान रहा है। कई विद्वानों का मानना है कि अभेदवाद पर चर्चा आधुनिक समय की ही देन है। क्रेग कैल्हन (Craig Calhoun) ने इस स्थिति का यह तर्क देते हुए उपयुक्त वर्णन किया है कि यह आधुनिक समय में व्यक्ति विशेष की स्थिति मजबूत करने, श्रेणीगत पहचान तथा स्वयं-समरूपता लाने के भरसक प्रयासों के रूप में परिलक्षित होती है। यह प्रमुखतया आधुनिक समाज का घटनाक्रम है क्योंकि कुछ विद्वानों का मानना है कि संजातीयता, धर्म, भाषा, लिंग, लिंग संबंधी अधिमान्यताओं, अथवा जातिगत स्थिति इत्यादि के प्रमुख सिद्धांत पर आधारित अभेदवाद पर बल एक प्रकार से भावनाशून्य आधुनिक विश्व में ''गुमनामी के जबरन उपचार'' की तरह है। इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि ''यह जुड़े होने की प्रक्रिया है, आराम की खोज है तथा सामुदायिक दृष्टिकोण है'' परन्तु जटिल सामाजिक परिवर्तनों तथा आधुनिक विश्व की विविध शक्तियों, कारकों तथा घटनाक्रमों के कारण इस प्रकार की स्थिति बनी है तथा अभेदवाद की समस्या को पहचान मिली है। हम कह सकते हैं कि ''वास्तविक आस्तित्व या अभेदवाद'' की खोज एक सरल एवं निष्कपट संभावना है; इसमें अक्सर परस्पर व्यापी तथा संघर्षरत, शास्त्र विरूद्ध तथा बहुपक्षीय ''स्वयं'' के साथ समझौता शामिल है। कास्कार्डी (Cascardi) ने यह टिप्पणी करते हुए इसकी संक्षिप्त व्याख्या की है कि ''आधुनिक विषय की परिभाषा अलग-अलग मान्यताओं वाले क्षेत्रों में इसे जोड़े जाने के रूप में दी जा सकती है, जिनमें से प्रत्येक क्षेत्र दूसरे को अलग-थलग करने तथा दूसरों पर अपनी प्राथमिकता का दावा करने का प्रयास करता है''

जिसके परिणामस्वरूप अभेदवाद संबंधी समस्याएं उत्पन्न होती हैं तथापि अभेदवाद पर बल देने के साथ-साथ समरूपी पहचान वाले क्षेत्रों में सामान्यता स्थापित करने संबधी वैयक्तिक तथा सामूहिक अभेदवाद सार्वभौमिक सोच का विषय बन चुका है।

17.2 अभेदवाद की राजनीति क्या है?

अब प्रश्न यह है कि अभेदवाद पर चर्चा किस प्रकार से राजनैतिक ढांचे का हिस्सा है ? अभेदवाद पर इस चर्चा का राजनैतिक आधार क्या है ? अभेदवाद संबंधी समस्या पर आधारित विशेषताओं वाले आंदोलनों के स्थापक सिद्धांत क्या है ? क्या हम श्रमिकों के आंदोलनों की व्याख्या अभेदवाद की राजनीति के उदाहरण के रूप में कर सकते हैं ? संक्षेप में, अभेदवाद की राजनीति क्या है तथा इसकी स्थापना से संबंधित सिद्धांत क्या हैं ?

अभेदवाद की राजनीति से अभिप्राय ''किन्हीं विशेष सामाजिक समूहों के सदस्यों के अन्याय से संबंधित सामान्य अनुभवों से उत्पन्न व्यापक राजनैतिक कार्यकलापों तथा इसके सिद्धांतों से है।'' अतः राजनैतिक कार्यकलाप का अर्थ उन राजनैतिक परियोजनाओं से है जिनके अन्तर्गत ''आत्मतत्व'' को निर्धारित करने वाली विशेषताओं जैसे – संजातीयता, लिंग, लैंगिक अभिरुचि, जातीय स्थिति इत्यादि के भेदों के आधार पर हाशिए पर रखे गए समूहों को ''बहिष्करण तथा निंदा से उबारने'' के प्रयासों पर बल दिया गया है। इस प्रकार से, अभेदवाद की राजनीति में उन सामाजिक समूहों के सशक्तीकरण, प्रतिनिधित्व तथा अन्य समूहों से उनकी अलग पहचान बनाने वाले तथा अलग करने वाले कारकों पर बल देते हुए उनके माध्यम से आत्मतत्व तथा भेद पर आधारित न कि समानता पर आधारित अभेद का प्रयास किया गया है। तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने पर इसका अर्थ यह हुआ कि अभेदवाद की राजनीति की विशेषताएं निश्चित रूप से वे मार्कर हैं जो किसी परिभाषात्मक मूल तत्व वाले समुच्चय के इर्द-गिर्द सामाजिक समूहों की पहचान सुनिश्चित करते हैं। ये मार्कर वृत्तिभाषा, लक्षणा, प्ररूप तथा शैक्षिक साहित्य में स्थापित और सकारात्मक विभेदन अथवा कार्रवाई द्वारा लागू भाषा, संस्कृति, संजातीयता, लिंग, लैंगिक अभिरूचियों, जातीय स्थितियों, धर्म, जनजाति, प्रजाति इत्यादि के हैं। अतः, अभेदवाद की राजनीति के समर्थक किसी ''तत्व' अथवा अन्यों को छोड़कर केवल समूह के सदस्यों की सामूहिक विशेषताओं को प्राथमिकता देते हैं तथा वे व्यक्ति विशेष के एकमात्र, आंतरिक, सुव्यवस्थित और निश्चित अभेद को स्वीकार करते हैं। ये अत्यंत अनिवार्य मार्कर उन संस्थागत मार्करों से भिन्न होते हैं जैसे श्रमिकों के मार्कर, जो किसी न किसी रूप में अभेद की राजनीति से जुड़े अत्यंत अनिवार्य प्राकृतिक हितों द्वारा परिभाषित लक्षणों से युक्त होते हैं। यद्यपि कई विद्वान यह तर्क दे सकते हैं कि ''श्रमिक'' एक वैध अधिकार प्राप्त आस्तित्व है तथा समूह के रूप में इसके आंदोलनों को अभेदवाद की राजनीति का नाम दिया जा सकता है परन्तु राजनैतिक परियोजनाओं के समूह के रूप में अभेदवाद की राजनीति का संबंध संभवतः सार्वभौमिक विचारों अथवा कार्यसूची की अपेक्षा कुछ अनिवार्य, स्थानीय विशेष वर्गीकृत पहचान तत्वों से है। अभेदवाद की राजनीति के सहवर्ती लक्षणों में सांझा समुदाय की भावना को मूर्त रूप देने के लिए पौराणिक, सांस्कृतिक चिन्हों तथा सगोत्रता के संबधों को उपयोग में लाया जाता है तथा उसके बाद इन पहलुओं का राजनीतिकरण किया जाता है ताकि उन विशेष विशिष्टताओं की पहचान का दावा किया जा सके।

अभेद की राजनीति की सबसे जबरदस्त आलोचना इस आधार पर की जाती है कि इसे अक्सर उन्हीं मार्करों द्वारा चुनौती जा जाती है जिन्हें स्वयं अथवा समुदाय की विशिष्टता का आधार बनाकर पहचान दी जाती है। इसके बावजूद यह तथ्य है कि अभेदवाद की राजनीति का कार्यक्षेत्र अवशोषण और निशक्तिकरण के विभिन्न पहलुओं, प्रबल समूहों द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली नकारात्मक लिपियों में सुधार तथा संशोधन लाना है ताकि व्यक्ति और समुदाय को सकारात्मक रूप देने में इन्हें सशक्त माध्यम के रूप में उपयोग में लाया जा सके। दूसरे शब्दों में, समुदाय को कथित रूप से परिभाषित करने वाले मार्कर उस सीमा तक निर्धारित किए जाते हैं कि वे दृढ़ हो जाते हैं तथा समूह में ही अनिवार्यता की ऐसी प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है जो अक्सर समूह के भीतर तथा समूह के बिना आंतरिक विकल्पानुमान का मार्ग बंद कर देती है तथा स्वयं अवरोध और अवशोषण का नया रूप धारण कर लेते है।

अभेदवाद की राजनीति पर अध्ययन को बौद्धिक वैधता बीसवीं शताब्दी के उतरार्द्ध अर्थात् 1950 तथा 1960 के दशक के दौरान संयुक्त राज्य अमेरिका से मिली जब द्वितीय दौर के नारी अधिकारवादियों, ब्लैक सिविल राइट, समलैंगिक लोगों के आन्दोलन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका और विश्व के अन्य भागों के विविध देशी आंदोलनों को उनके संबंधित सामाजिक समूहों के प्रति हुए अन्याय के आधार पर उचित ठहराया जा रहा था और वैधता दी जा रही थी परन्तु हेज (Heyes) जैसे विद्वानों ने इस तथ्य का उल्लेख किया है कि यद्यपि ''अभेदवाद की राजनीति'' का उल्लेख मैरी वॉलस्टोनक्राफ्ट से लेकर फ्रैंटज फैनन से पूर्व के विद्वानों के लेखन में है तथापि – अभेदवाद की राजनीति – इन शब्दों का वास्तविक रूप से उपयोग केवल पिछले 15 वर्षों में हुआ है।

17.3 भारत में अभेदवाद की राजनीति

हम देखते हैं कि भारत में स्वतंत्रता के बाद उदार प्रजातांत्रिक शासन अपनाए जाने के बावजूद समुदाय तथा सामूहिक अस्तित्व शक्तिशाली रहे हैं तथा आज भी अपनी पहचान का दावा करते हैं। बेटेल (Beteille) का मानना है कि वास्तव में, भारतीय शासनतंत्र में राजभक्ति के साथ उदारवादी (वैयक्तिक) भावना तथा समुदाय की चिंताओं और जागरूकता के साथ सामजस्य स्थापित करने का निरन्तर प्रयास किया गया है। पारेख (Parekh) के अनुसार इस प्रक्रिया से व्यापक स्तर पर स्वायत्त तथा प्रमुखतः स्वशासित समुदायों को पहचान मिली है। इसने व्यक्ति तथा समुदाय, दोनों को ही अधिकार प्राप्तकर्त्ता मानते हुए व्यक्ति तथा समुदायों के समुदाय के बीच तालमेल बैठाने की कोशिश की है।

संभवतः स्वतंत्रता के बाद के भारत में विशिष्ट अस्तित्व का दावा तथा पहचान प्रदान किए जाने के पीछे कई विद्वानों का मानना था कि अस्तित्व के दावे का भौतिक आधार स्वतंत्रता के बाद के देश तथा इसकी संरचनाओं और संस्थानों द्वारा उपलब्ध कराया गया। अन्य शब्दों में, ''राज्य को विशिष्ट पहचान के रूप में लोगों को परिभाषित करने वाली तथा उनकी पहचान बनाने में देश की संरचनाओं के निर्माण और रख-रखाव के माध्यम से सक्रिय योगदानकर्त्ता'' के रूप में देखा जा रहा है। इस प्रकार से भारत मे कई रूपों में अस्तित्व की राजनीति दृष्टिगोचर होती है तथापि इसका सर्वाधिक भव्य रूप भाषा, धर्म, जाति, संजातीयता अथवा जनजातीय पहचान

पर आधारित अस्तित्व की राजनीति में है परन्तु इसका यह अर्थ निकालना गलत होगा कि इनमें से प्रत्येक मार्कर स्वायत्त रूप से तथा अन्य मार्करों को परस्पर रूप से प्रभावित किए बिना कार्य करता है। दूसरे शब्दों में, एक समरूप भाषायी समूह को संबंधित जाति के अनुसार वर्गीकृत किया जा सकता है और उसे धार्मिक दृष्टि से पुनः वर्गीकृत कर सकते हैं या फिर सब को विस्तृत संजाति के अंतर्गत रख सकते हैं।

17.3.1 जाति

जाति पर आधारित भेदभाव तथा दमन – भारतीय समाज की हानिकारक विशेषता रही है तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राजनीति के साथ इसके जुड़ने से न केवल अब तक अवशोषित जातीय समूहों को राजनैतिक स्वतंत्रता और पहचान दी जा सकी अपितु राजनैतिक पूंजी के रूप में इसकी प्रभावकारिता के प्रति जागरूकता आई है। वास्तव में, दीपांकर गुप्ता ने अम्बेडकर तथा मंडल कमीशन के जाति के बारे में मतों के अन्तर की व्याख्या करते हुए इस विरोधाभास को पैने ढंग से उजागर किया है। अम्बेडकर ने भारतीय सामाजिक जीवन तथा शासन तंत्र से संस्थान के रूप में अस्पृश्यता को दूर करने के लिए आरक्षण अथवा संरक्षित विभेद की नीति तैयार की जबकि मंडल कमीशन ने जाति को महत्वपूर्ण राजनैतिक संसाधन माना है। वास्तव में, मंडल कमीशन को जाति पर आधारित अभेद को परिसम्पत्ति के रूप बदलने के पीछे बौद्धिक प्रेरणा माना जा सकता है जिसका उपयोग राजनैतिक और आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए किया जा सके। यद्यपि यह भी कहा जा सकता है कि पहले से ही प्रबल स्थिति के कारण उच्च जातियां राजनैतिक और आर्थिक प्रणाली में प्रभावी पदों पर थीं तथा जब मंडल ने जातीय अभेद की हानियों की पहचान करते हुए इनके लाभ का दलितों को बोध कराया, तब से संघर्ष जारी है। शुद्धता तथा अशुद्धता, अधिक्रम तथा विभेद पर आधारित जाति प्रथा सामाजिक गतिशीलता के बावजूद शूद्रों और जाति बहिष्कृतों के लिए दमनकारी सिद्ध हुई है जिन्हें आनुष्ठानिक अशुद्धता का कलंक झेलना पड़ा, वे निर्धनता और निरक्षरता में जकड़े रहे तथा उन्हें राजनैतिक शक्तियों से वंचित रखा गया। जाति पर आधारित प्रतिरोधी अभेदवाद की राजनीति का उद्‌गम संरक्षित विभेद के रूप में अवशोषित जाति समूहों को राज्य द्वारा सहयोग देने के मुद्‌दे से जुड़ा। जाति पर आधारित समूह-अभेदवाद को जाति अभेदों से संबंधित राजनैतिक बोध से प्रबलीकरण मिला तथा जातियों सहित विशिष्ट अभेदों के हितों की रक्षा का दावा करने वाले राजनैतिक दलों द्वारा इसे संस्थागत बनाया गया। परिणामस्वरूप, हमारे देश में उच्च जाति प्रधान भारतीय जनता पार्टी, निम्न जाति प्रधान बहुजन समाज पार्टी या समाजवादी पार्टी हैं, इसमें यह तथ्य भी शामिल है कि वामपंथी दलों ने चुनावी राजनीति में लाभ उठाने के उद्‌देश्य से जाति प्रणाली का मौन अनुपालन किया है (उदाहरण के लिए 1950 में आन्ध्र प्रदेश के चुनावों में कृषि श्रमिकों को संचालित करने के लिए जाति संबंधी मुहावरों का प्रयोग)। राजनीतिकरण का कुल मिलाकर यह परिणाम निकला कि हम यह कह सकते हैं कि जाति पर आधारित अभेदवाद की राजनीति की भारतीय समाज तथा शासन-तंत्र में दोहरी भूमिका है। इससे जाति पर आधारित भारतीय समाज के काफी हद तक जनतंत्रीकरण के साथ-साथ वर्ग पर आधारित संस्थाओं के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

समग्र रूप से, जाति भारतीय समाज तथा राजनीति का प्रमुख निर्धारक अंश बन गई है तथा अब तक उपेक्षित जाति समूहों ने संगठित राजनीति और जातीय संबंधों के बारे में प्राप्त हुई जानकारी से भारतीय राजनीति में आमूल-चूल परिवर्तन हुए हैं, जहां जाति-वर्ग गठजोड़ों में भी बदलाव दृष्टिगोचर होता है। जाति-अभेद के अनुसार इनकी एकजुटता संचालों के विशुद्ध प्रभाव के परिणामस्वरूप न केवल अब नए उभरने वाले समूहों का सशक्तीकरण हुआ है अपितु प्रतिरोधी राजनीति की सघनता में वृद्धि हुई है और संभवतः यह प्रक्रिया अभिशासन के बढ़ते हुए संकट को और बढ़ावा देगी।

17.3.2 धर्म

अभेदवाद की राजनीति का एक अन्य रूप धर्म के सांझा रिश्ते के आधार पर निर्मित समुदाय द्वारा प्रभावित होता है। भारत में हिन्दू, इस्लाम, सिक्ख, ईसाई तथा ज़ोरोस्ट्रइनिज्म कुछ धर्मों को लोग मानते हैं। संख्या की दृष्टि से हिन्दुओं की संख्या सर्वाधिक है जिसके कारण कई हिन्दू निष्ठावान समूहों जैसे राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ या शिव सेना तथा राजनैतिक दलों जैसे भारतीय जनता पार्टी अथवा हिन्दू महासभा ने यह दावा किया है कि भारत हिन्दू राज्य है। इन दावों के कारण भारत तथा इसके इतिहास के बारे में समधर्मी होने की मिथ्या धारणा को बढ़ावा मिला है। इन दावों का अन्य धार्मिक समूहों ने विरोध किया है जिन्हें इन समान धर्म संबंधी दावों के कारण अपने धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवनयापन की स्वायत्ता को खोने का खतरा नजर आता है। इसके कारण विवाद खड़े हुए हैं जिनके परिणामस्वरूप अक्सर साम्प्रदायिक दंगे हुए हैं। धार्मिक आधार पर पहचान का विभेद करने वाली प्रक्रिया ''तुष्टिकरण के सिद्धांत'' ''जबरन धर्म परिवर्तन'', अल्पसंख्यक धार्मिक समूहों के सामान्यतः ''हिन्दू विरोधी'' तथा इस प्रकार से ''भारत विरोधी'' विचारों, बहुसंख्यक समूहों की ''प्रधान बनने की आकांक्षाओं'' तथा अल्पसंख्यक समूहों को ''सामाजिक-सांस्कृतिक'' दृष्टि से हिस्सेदार न बनाने पर आधारित जनप्रायः को मान्य मिथ्या धारणाओं के कारण हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से 19वीं शताब्दी का हिन्दू नवजागरण आंदोलन वह अवधि मानी गई है जब धार्मिक आधार पर दो अलग-अलग संस्कृतियों के बीच खाई बनी – हिन्दू तथा मुस्लिम और विभाजन के बाद यह खाई अधिक गहरी हो गई। साम्प्रदायिक विचारधारा के रूप में इस खाई का संस्थानकरण किया गया जो भारत के धर्मनिरपेक्ष सामाजिक ढांचे तथा जनतांत्रिक शासन तंत्र के लिए प्रमुख चुनौती बन गई है। यद्यपि पिछली शताब्दी के अधिकांश समय में हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष प्रमुख साम्प्रदायिक विवाद रहे हैं तथापि हाल ही के वर्षों में हिन्दू-सिक्ख, हिन्दू-ईसाई संघर्षों ने सामुदायिक झगड़ों का रूप ले लिया है। हिन्दू राष्ट्रीय अभिकथनवाद, प्रतिनिधित्व सरकार की राजनीति, सामुदायिक बोध होने तथा सामाजिक-आर्थिक संसाधनों के लिए प्रतियोगिता, साम्प्रदायिक विचारधाराओं के जन्म लेने तथा प्रमुख दंगों के रूप में उनके परिवर्तित होने के प्रमुख कारण हैं।

धर्म पर आधारित अभेदवाद न केवल अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ में विवाद का प्रमुख स्रोत बन चुका है अपितु 1990 के दशक के आरम्भ से यह भारतीय लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता के लिए चुनौती बन गई है। बहुसंख्यक अभिकथनात्मकता (Majoritarian Assertiveness) भारतीय जनता पार्टी द्वारा अपने ''हिन्दू'' संघटकों के साथ मिलकर हिन्दू बोध को सुदृढ़ करने के लिए

राजनैतिक सहयोग तथा मार्च, 1998 में गठबंधन सरकार बनाने से संस्थानगत बन गई है किन्तु सभी अभेदवादी प्रक्रियाओं की भांति धार्मिक साम्प्रदायिकता के अंतर्गत ''हम सब एक जैसे हैं'' की भावना को जन्म देते हुए विशेष धर्म के अन्दर आंतरिक मतभेदों को कम महत्व देना होता है। अतः, सहधर्मी हिन्दू अभेदवाद के भीतर जाति समूहों के बीच मतभेद तथा इस्लाम के अंतर्गत भाषायी और शाखायी मतभेदों को ताक पर रखना पड़ता है ताकि एक सार धार्मिक अभेदवाद की प्रक्रिया बन सके।

स्वतंत्र भारत में बहुसंख्यकों द्वारा स्वयं को समाज में प्रबल सिद्ध करने के कारण अल्पसंख्यक धर्म प्रबलता के रूप में विरोधाभास उत्पन्न हो गया जिसके परिणामस्वरूप विवादमय राजनीति का जन्म हुआ जिससे भारत में नागरिक समाज के समन्वयात्मक पहलुओं की अनदेखी हुई है। ''इतिहास को नए तरीके से पुनः लिखने'' की प्रक्रिया द्वारा धार्मिक प्रबलता के बढ़ते हुए संस्थानीकरण से भारत के राष्ट्रीय अस्तित्व को साम्प्रदायिक विचारधाराओं के साथ पुनः स्थापित करने की संभावनाएं हैं।

17.3.3 भाषा

सामूहिकता की अवधारणा पर आधारित भाषा के कारण परस्पर जुड़े अभेदवाद संबंधी दावों का आरम्भ कांग्रेस की स्वतंत्रता पूर्व की राजनीति से है जिसने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन का विश्वास दिया था परन्तु जे वी पी (जवाहरलाल नेहरू, वल्लभ भाई पटेल और पताभी सितारामैय्या) समिति का यह मानना था कि यदि सार्वजनिक भावना ''आग्रहपूर्ण तथा अत्यधिक'' है तो तत्कालीन मद्रास के तेलगुभाषी क्षेत्र से आन्ध्र प्रदेश के गठन को स्वीकृति दी जा सकती थी जिसका वर्णन माइकल ब्रेकर (Michael Brecher) ने ''भारतीय राजनीति में 1953 से 1956 के दौरान चले राज्यों के पुनर्गठन से संबंधित कटु संघर्ष का शुरुआती कदम था'' परन्तु यह विडम्बना रही कि भाषायी सामूहिकता के लिए अलग राज्यों के दावे 1956 में समाप्त नहीं हुए, यहां तक कि आज भी यह मांग भारतीय नेताओं के लिए चुनौती बनी हुई है परन्तु समस्या यह रही है कि गठित किए गए अथवा राज्य की मांग करने वाले राज्यों में से कोई भी एकल-संजातीय नहीं है तथा कुछ में तो संख्या तथा राजनीति की दृष्टि से सशक्त अल्पसंख्यक भी हैं जिसके परिणामस्वरूप राज्यों के लिए मांग के कारण वर्तमान राज्यों की सीमाओं को खतरा जारी है तथा भाषायी राज्यों के बीच सीमा विवाद के संघर्ष चल रहे हैं। उदाहरण के तौर पर बेलगांव जिले से संबंधित महाराष्ट्र तथा कर्नाटक के मध्य विवाद अथवा मणिपुर के कुछ भागों के लिए नागालैंड का दावा।

सम्पूर्ण देश के लिए एक समान भाषा नीति न होने के कारण भाषायी राज्यों की समस्या और जटिल हुई है। चूंकि प्रत्येक राज्य में प्रमुख क्षेत्रीय भाषा ही शिक्षा तथा सामाजिक संचार का माध्यम रहती है, अतः प्रत्येक की अपनी भाषा के प्रति लगाव तथा निष्ठा, अपनी भाषा के उदगम राज्य के बाहर भी अभिव्यक्त हो जाती है। उदाहरणतया अपने उद्गम राज्य के बाहर भाषायी सांस्कृतिक तथा सामाजिक समूहों से अलग भाषायी समाज में एकता और साम्प्रदायिक भावना सुदृढ़ की जा सकती है। अतः भाषा के आधार पर अभेद किया जाता है तथा ''समूह'' और''समूह के बाहर'' की परिभाषा निर्धारित की जाती है।

यद्यपि यह आमतौर पर माना जाता है कि भाषायी राज्यों में विषम जातीय समाज में सामूहिक स्वतंत्रता तथा स्वायतता आती है, तथापि आलोचकों का मत है कि भाषायी राज्यों ने क्षेत्रवाद को बढ़ावा दिया है और देश में अभेद संबंधी दावों में तीव्र वृद्धि हुई है, जहां 1652 ''मातृभाषाएं'' हैं तथा केवल 14 मान्यता प्राप्त भाषाएं हैं जिनके आधार पर राज्य बने हैं। उनका तर्क है कि भाषायी समूहों की पहचान के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय एकता तथा राष्ट्रीयता की भावना को बढ़ावा नहीं मिला तथा ''मराठियों'' के लिए महाराष्ट्र तथा गुजरातियों के लिए गुजरात इत्यादि'' की भावना के कारण भाषायी अविश्वास उत्पन्न हुआ है और आर्थिक तथा राजनैतिक लाभ को भाषायी दृष्टि से परिभाषित किया गया है।

17.3.4 संजातीयता

आप इस पाठ्यक्रम की पुस्तक 2 की इकाई 26 में संजातीयता पर विस्तृत अध्ययन करेंगे। संजातीयता अभेद की परिकल्पना के दो तरीके हैं – एक, किसी एक पहलू – भाषा, धर्म, जाति, क्षेत्र इत्यादि के आधार पर तथा दूसरे, बहुपक्षीय विशेषताओं के आधार पर संचित रूप से अभेद बनाना। तथापि, एक से अधिक विशेषता – संस्कृति, प्रथा, क्षेत्र, धर्म अथवा जाति के आधार पर अभेद निर्माण के दूसरे तरीके को संजातीय अभेद निर्माण का सर्वाधिक लोकप्रिय तरीका माना गया है। एक से अधिक संजातीय अभेदों के मध्य संबंध मधुर अथवा कटु दोनों ही हो सकते हैं। वास्तविक अथवा काल्पनिक आधार पर संजातीय अभेदों के बीच प्रतियोगिता होने पर यह स्वायतता आंदोलनों, अलगाववादी अथवा संजातीय दंगों की मांग के रूप में परिलक्षित होती है। आप पुस्तक 2 की 26वीं इकाई में संजातीयता के प्रमुख उदाहरणों का अध्ययन करेंगे।

17.4 सारांश

अभेदवाद आधुनिक राजनीति का महत्वपूर्ण घटनाक्रम है। किसी समूह के सामान्य गुणों– भाषा, लिंग, धर्म, संस्कृति, संजातीयता इत्यादि – में से कुछ अथवा सभी के आधार पर किसी समूह के सदस्यों की पहचान से अभेदवाद के अस्तित्व अथवा निर्माण का पता चलता है। इन मार्करों के आधार पर एकजुटता को अभेदवाद की राजनीति का नाम दिया गया है। अभेदवाद की राजनीति को 1950 से 1960 के दशकों के दौरान संयुक्त राज्य अमेरिका तथा यूरोप में वैधता मिली।

अभेदवाद की राजनीति भारतीय राजनीति का प्रमुख पहलू है। मंडल कमीशन की रिपोर्ट के लागू होने के बाद दलित राजनीति, विशेषकर बहुजन समाज पार्टी तथा पिछड़े वर्ग की राजनीति के उदय, 1950 के बाद भारतीय राज्यों के भाषायी संगठन, भारतीय जनता पार्टी के उदय, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ जैसी संस्थाओं की सक्रिय भूमिका तथा देश के गई भागों में उप्लवकारी तथा स्वायतता आंदोलन भारत में अभेदवाद की राजनीति के उदाहरण हैं।

भारत की जनतांत्रिक राजनैतिक प्रणाली में सामान्य सामूहिक विशेषताओं के आधार पर विभिन्न समूहों को संगठित करने तथा उन्हें प्रबलित करने की क्षमता है। अभेदवाद की राजनीति की भारतीय राजनीति पर नकारात्मक तथा सकारात्मक भूमिका है।

17.5 अभ्यास प्रश्न

1) अभेदवाद की राजनीति क्या है ? व्याख्या कीजिए।

2) भारतीय राजनीति में भाषा की भूमिका की विवेचना कीजिए।

3) भारतीय राजनीति में धर्म तथा जाति की भूमिका पर टिप्पणी कीजिए।

4) संजातीयता राजनीति को कैसे प्रभावित करती हैं ?